© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 07 | October - December 2018

योग विक्षेप एवं चित्त प्रसादन के उपाय : एक विवेचना

श्री जयपाल सिंह राजपूत , अनुराधा

[1]सहायक प्राध्यापक, योग विज्ञान , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।
[2]एम॰ए॰ योग द्वितीय वर्ष , चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द।

प्रस्तावना

ISSN 2454-308X

महर्षि पतंजलि ईश्वर के नाम और स्वरूप– चिंतन के फलस्वरूप समाप्त होने वाले अंतराय (विघ्नों) के संदर्भ मे बताते है और यहस्पष्ट करते है किकिस प्रकार साधकइन विघ्नो को समाप्त कर अपने चित्त को निर्मल कर सकता है। इसी का वर्णन करते हुए वहनौ प्रकार के अंतरायों का वर्णन करते है और उनके साथ होने वाले दूसरे अन्य पॉच विघ्नो का भी वर्णन करते है। उन विघ्नो को दूर करने हेतु वहसाधककी योग्यता अनुसार विभिन्न उपायो का वर्णन करते है। इन्ही विघ्नो को योगान्तराय तथा इन्हे दूर करने के उपाय को चित्त प्रसादन का उपाय कहा है।

योग अंतराय

अंतराय का अर्थ है विघ्न या विक्षेप अर्थात चित्त मे जो भी विक्षेप होते है, चित्त अंतराय कहलाते है। महर्षि पतंजलि ने इसे निम्न प्रकार से बताया है।

''व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनालब्ध–
भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः'' पा.यो.स ूत्र 1/30

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रांति–दर्शन, अलब्ध भूमिकत्व और अनवस्थितत्व ये नौ चित्त के विक्षेपहै, वे ही अंतराय अर्थात विघ्नरूपहै।

महर्षि व्यास –

'नव अंतरायाश्चित्तस्य विक्षेपाः सहएते चित्त वृत्ति भिर्भवंति''
ये नौ अंतराय चित्त के विक्षेपहै, चित्त वृत्ति के साथ ये उत्पन्न होते है।

स्वामी हरिहरानन्द

अंतराय नष्ट होना तथा चित्त का सम्यकसमाहित होना एकही बात है ईश्वर प्राणिधान के द्वारा ये सब अंतराय दुर हो जाते है, और सात्विकनिर्मल बुद्धि उगती है। ये विक्षेपयोग के मल, योग के अंतराय और योग के प्रतिपक्षी कहलाते है।

1. व्याधि– शरीर मे किसी प्रकार का रोग, इंद्रियो मे कमजोरियॉ आना तथा चित्त मे भ्रम, उद्विग्रत आदि आ जाना व्याधि है।
2. स्त्यान– कार्य करने मे असमर्थ होना, अकर्मण्यता, कार्य मे अनुत्साहअथवा सामर्थ्य की कमी को स्त्यान कहते है।
3. संशय– योग विद्याा की वस्तु स्थिति पर विश्वास न होना तथा अपने प्रयत्न की सफलता पर आश ंका करना सशंय कहलाता है।
4. प्रमाद– लापरवाहीपूर्वकयोग साधना करना, नियमित क्रम को अधूरा छोड देना और वहबिगड भी जाए, तो भी उसकी चिन्ता न करना प्रमाद कहलाता है।
5. आलस्य– तमोगुण के रहने से शरीर का भारी रहना, कार्य मे मन न लगना, सुस्ती बनी रहना आलस्य कालस्य कहलाता है।
6. अविरति– विषयासक्ति होने से मन का विषयो मे ही लगे रहना तथा चित्त मे वैराग्य का आभाव हो जाना अविरति कहलाता है।
7. भ्रांतिदर्शन– किसी कारणवश अध्यात्म के दर्शन और साधन पथका वास्तविकज्ञान न हो पाना अथवा यहसाधन उपयुक्त नही है, ऐसा भ्रांतिकज्ञान भ्रांतिदर्शन कहलाता है।
8. अलब्धभ ूमिकत्व– निरंतर साधना करने पर भी साधककी स्थिति मे न पहुॅच पाना तथा मध्य मे ही मन के वेग का अवरूद्ध हो जाना अलब्धभूमिकत्व कहलाता है।

9. अनवस्थिति– चित्त का एकाग्र अथवा स्थिर न रहपाना, जिससे भूमिका तकन पहुॅच पाना और अस्थिरता के फलस्वरूपमनोभूमि का डांवाडोल बने रहना अनवस्थिति कहलाता है। स्वामी विवेकानन्द व्याधि इस जीवन के उस पार जाने के लिए यह शरीर ही एकमात्र नाव है। इसे स्वस्थ रखने के लिए यत्न करना चाहिए। स्त्यान मानसिक जडता आने पर हमारी योग विषयकसारी रूचि खो जाती है। स ंशय इस रूचि के अभाव मे, साधना करने के लिए न तो दृढ संकल्पहोगा, न शक्ति मिलेगी। उस विषय मे हमारा विचारजनित विश्वास कितना भी बलशाली क्यो न रहे, पर जब तकदूरदर्शन, दूरभ्रमण आदि अलौकिकअनुभूतिया ं नही होती, तब तकइस विद्या की सत्यता के बारे मे बहुत से संशय उपस्थित होगे। जब इन सब का थोडा–थोडा अभ्यास होने लगता है, तब साधकसाधनमार्ग मे और भी अध्यावसायशील होता जाता है। अनवस्थित साधना करते–करते देखोगे किकुछ दिन या कुछ सप्ताहतो मन अनायास ही एकाग्र और स्थिर हो जाता है, किंतु अचानक एक दिन देखोगे कि तुम्हारा यहउन्नति–स्त्रोत ब ंद हो गयाहै। स्पष्ट है किये सभी विघ्न ऐसे है जो किचित्त मे विक्षेप रूप मे उत्पन्न होकर साधना मार्ग मे आगे महर्षि पतंजलि ने इन चित्त अंतरायो के अतिरिक्त अन्य विघ्नो की भी चर्चा की है– *''दूःखदौर्मनस्याऽगमेजयत्व श्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः'' पा.यो.सूत्र 1/31* दूःख दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास तथा प्रश्वास ये पॉच विघ्न भी विक्षेपो के साथ रहते है। स्वामी हरिहरानंद श्वास–प्रश्वास से स्वाभाविकश्वास और स्वाभाविक प्रश्वास लेने चाहिए। अविच्छा से अर्थात् अनजाने मे ही आदमियो के जो श्वास–प्रश्वास हुआ करते है, ''वे समाधि के अ ंतराय है किंतु समाधि के अंगभूत श्वास–प्रश्वास जो–जो वृत्तिरोधकारी, प्राणायामिकप्रयत्न से किए जाते है, वे विक्षेपके सहजात नही भी हो सकते।''

स्वामी ओमानन्द तीर्थ

''दुख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास–प्रश्वास ये विक्षेपो के साथहोने वाले है, अर्थात उनके होने से ये पॉच विघ्न भी उपस्थित हो जाते है।''इनका वर्णन इस प्रकार है–

1. दुःख– अर्थात् कष्ट ये तीन प्रकार के होते है– आध्यात्मिक, आधिभौतिकऔर आधिदैविक।
   क) आध्यात्मिकदुःख– राग, द्वेश, काम–क्रोध, भय–चिन्ता आदि होने से मन, इद्रियां और शरीर मे जो विकलता एवं व ेदना होती है, उसी का नाम आध्यात्मिकदुःख है। ख) आधिभौतिकदुःख– शत्रु, दस्यु, शेर, सर्प, मच्छर आदि द्वारा होने वाले कष्टो को आधिभौतिकदुःख कहते है।
   ग) आधिदैविकदुःख– आंधी–तूफान, भूकम्प, बिजली, सर्दी–गर्मी आदि दैवी करणो से जो पीडा होती है, उसे आधिदैविकदुःख कहते है।
2. दौर्मनस्य– मन की इच्छा पूर्ण न होने से मन मे जो क्षोभ उत्पन्न होता है।
3. अंगमेजयत्व– शरीर के अवयवो का कंपित होना।
4. श्वास– श्वास प्रक्रिया पर नियंत्रण न हो पाने के कारण बाहर की वायु का नासिका मार्ग के अ ंदर प्रवेश कर जाना अर्थात् बार्हिकुंभकमे विघ्न हो जाना।
5. प्रश्वास– न चाहने पर भी (यौगिकक्रियाओ के समय) अंदर की वायु का बाहर निकल जाना (अंतरकु ंभकमे विघ्न हो जाना) प्रश्वास।

इन पॉचो विघ्नो को उपविक्षेपभी कहते है, क्योकिमुख्य विक्षेपनौ है। स्वामी विवेकानन्द ने भी स्पष्ट करते हुए कहा है किजब कभी एकाग्रता का अभ्यास किया जाता है, तभी मन और शरीर पूर्ण स्थिर भाव धारण करते है। जब साधना ठीकतरीके से नही होती, जब चित्त नियत नही रहता, तभी वे सब विघ्न उपस्थित हो जाते है। उधर तनिकभी ध्यान न देकर, साधना करते रहो। साधना से ही वे सब चले जाए ंगे और तब आसन स्थिर हो जाएगा। स्पष्ट है किपूर्व वर्णित विक्षेपो के अलावा उनके रहने पर ही ये उपविक्षेपआते है अतः इन्हे ध्यान नही देने से भी साधना द्वारा वे दूर हो जायेगे।

चित्त प्रसादन के उपाय

प्रसादन का सामान्य अर्थ है– निर्मलता। अर्थात चित्त प्रसादन का तात्पर्य है– चित्त का निर्मल या एकाग्र करने का उपाय। महर्षि पतंजलि ने चित्त को निर्मल करने के अनेकउपायो का वर्णन किया है, जिसे चित्त प्रसादन कहा गया है। ये उपाय है–

1. चार भावनाऍ
2. प्राणायाम
3. दिव्यविषय
4. ज्योतिश्मती
5. वीतराग पुरूषो का ध्यान

6. स्वप्न

1. चार भावनाएँ महर्षि पतंजलि के अनुसार
"मैत्री करूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यविशयाणा ं भावानातश्चित्तप्रसादनम्" पा.यो.सूत्र 1/33
अर्थात सुख दुःख पुण्यापुण्य, पुण्यात्मा व आतमा क्रमशः जिन– गुणो के विषय है। ऐसे मैत्री, करूणा, मुदिता, प्रसन्नता एवं उपेक्षा की भावना से चित्त निर्मल हो जाता है। आनंदित व्यक्ति के प्रति मैत्री , दुखी व्यक्ति के प्रति करूणा, पुण्यवान के प्रति मुदिता तथा पापी के प्रति उपेक्षा, इन भावनाओ का संवर्धन करने से मन शांत हो जाता है।

व्यास भाष्य के अनुसार

इस प्रकार भावना करते करते शुक्ल धर्म उत्पन्न होता है जिससे चित्त प्रसन्न व निर्मल होता है। प्रसन्न चित्त एकाग्र होकर स्थितिपद पाता है।

आचार्य श्रीराम शर्मा जी के अनुसार

यदि कोई व्यक्ति सुखी है तो उसके सुख मे सुखी बनने का भाव ला कर उसके प्रति मित्रता का भाव रखना उचित है क्योकिसामान्यतया लोग दूसरे के सुख को देखकर ईर्ष्या करते है किंतु मित्र के सुख मे सुखी रहते है। इसी प्रकार दुःख के प्रति दयाव करूणा का भाव रख कर उसकी सहायता करने के उपाय मे लग जाना चाहिये । क्योकि प्रायः यह देखा जाता है कि लोग दूसरो के दुःख मे सुखी होते है, पर यह होना चाहिये कि उन मे दया का भाव रख कर दुःख दूर करने का उपाय करे।
क) मैत्री– सुखी के प्रति मैत्री का भाव रखना चाहिए क्योकि सामान्यतया लोग किसी को सुखी देखकर ईर्ष्या करते है।
ख) करूणा– दुःखी के प्रति करूणा का भाव होना चाहिए तथा उनकी सहायता करनी चाहिए।
ग) मुदिता– अर्थात् प्रसन्नता। अच्छा कार्य करने वाले पुण्यात्मा लोगो के प्रति प्रसन्नता का भाव, प्रशंसा प्रोत्साहन देने का भाव होना चाहिए।
घ) उपेक्षा– दुरात्मा आदि जो हमे कष्ट पहुंचाने की चेष्टा करते है उनके प्रति क्रोध या बदले की भावना न रखकर उपेक्षा व उदासीनता का भाव रखना चाहिए।

अर्थात जैसे सुखी जनो मे–मै सुखी हूँ, ऐसा समझ कर उनके साथ प्रेम करे, न किर्ष्या अर्थात उनकी बडाई का सहन न करना। दुःखियो को देख कर इनके दुःख की निवृत्ति कैसे हो? इस प्रकार दया ही करे न कि घृणा व तिरस्कार। पुण्य आत्माओ मे उनके पुण्य की बडाई करके अपनी प्रसन्नता ही प्रकट करे, पापियो मे उदासीनता व उपेक्षा धारण करे अर्थात उनके पापमे सम्मति प्रकट करे न किउनसे द्वेष करे।
जब इस प्रकार मैत्री आदि की भावना करने से चित्त प्रसन्न व निर्मल होता है, तब इससे समाधि प्रकट होती है इनके होने पर समाधि प्राप्त नही की जा सकती क्योकिये चित्त के मल–विघ्न है।

2. प्राणायाम– प्राणायाम को दूसरे उपाय के रूपमे महर्षि पतंजलि ने बताया है– *प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य पा.यो. सूत्र 1/34* अर्थात प्राण का बारम्बार प्रच्छर्दन– बाहर निकलने बौर विधारण– बाहर रोकने का प्रयास करने से भी चित्त निर्मल हो जाता है। स्वामी हरिहरानन्द "चित्त की स्थिति के लिए चित्त काब ंधन आवश्यकहै ध्यान के साथ प्राणायाम न करने पर चित्त स्थिर नही होता, अपितु अधिकचंचल ही होता है। इसलिए प्रत्येकप्राणायाम मे श्वास के साथ चित्त का भी भावविशेष से एकाग्र करना पडता है। यह भी एकप्रकार की चित्त स्थिति है और इसस ` भी समाधि सिद्ध हो सकती है।" श्वास के साथ एकही प्रयत्न के द्वारा विक्षिप्त चित्त भी सहज रूपसे ही आध्यात्मिकप्रदेश मे बद्ध होता है।
स्वामी विवेकानन्द ने भी इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि समस्त जगत मे जो ऊर्जा शक्ति व्याप्त हुई है, उसी का नाम है प्राण। चित्त यंत्रस्वरूपहोकर चारो ओर से प्राण को भीतर खीचता है और उससे शरीर रक्षा करने वाली विभिन्न जीवनी शक्तियॉ तथा विचार, इच्छा एवं अन्यान्य सब शक्तियॉ उत्पन्न करता है। पूर्वोक्त प्राणायाम क्रिया से हम शरीर की समस्त भिन्न–भिन्न गतियो का तथा शरीर के अंतर्गत समस्त भिन्न–भिन्न स्त्रायविकशक्ति प्रवहो को वश मे ला सकते है। प्राण जीवनी शक्ति है अतः प्राणायाम की क्रिया द्वारा हम चित्त को निर्मल बना सकते है क्योकि इसमे हम प्राण वायु को अन्दर खीचते है तत्पश्चात् श्वास बाहर निकाल कर वही रोकते है। यह विधारण कहलाता है। इससे चित्त एकाग्र होता है और वह निर्मल बन जाता है।

3. दिव्य विषय– महर्षि पतंजलि के अनुसार– ''विषयवती वा प्रव ृत्ति रूत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी।'' पा.या ेसूत्र 1/35 विषयावली प्रवृत्ति उत्पन्न हो कर वहभी मन की स्थिति को बांधने वाली हो जाती है। अर्थात जब ध्यान के अभ्यास से (दिव्य विषयो का साक्षात कराने वाली) अर्तीद्रिय संवेदना उत्पन्न होती है, तो मन आत्मा विश्वास पाता है और इसके कारण साधना मे निरंतरता बनी रहती है। व्यास भाष्य शास्त्र अनुमान और आचार्ये द्वारा प्राप्त उपदेश मे संशय दूर करने के लिए किसी एक विशेष का प्रत्यक्ष करना आवश्यक होता है। ये प्रवृत्तियॉ उत्पन्न होकर चित्त को स्थिति मे दृढ बद्ध करती है, संशय को नष्ट करती है और ये समाधिप्रज्ञा की द्वारस्वरूपहोता है। स्वामी विवेकानन्द नासाग्र मे धारणा करने पर श्वास वायु मे ही जो एकप्रकार का अभूतपूर्ण सुगंधानुभव होता है सहज ही उसकी उपलब्धि की जा सकती है। जिह्वा आदि स्थानो पर धारणा करने से ज्ञानेन्द्रियो की सूक्ष्म शक्ति प्रकट होती है।

वीतराग पुरूषो का ध्यान– ''वीतरागविषयं वा चित्त म्'' पायो.सूत्र 1/37
अर्थात वीतराग पुरूषो का विषय करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है अथवा विरगत वहहै जिसके सभी राग, द्वेष, आसक्ति, आका ंक्षाए समाप्त हो चुकी है। स्वामी विवेकानन्द यदि अपने चित्त को रागहीन अर्थात संकल्पहीन किया जा सके तो उस चित्त भाव को अभ्यास द्वारा स्थिर करने पर भी वीतराग विषयकचित्त होता है। किन्ही महापुरूषो या साधु को लो जो पूर्ण रूपसे अनासक्त हो और जिन पर तुम्हारी अत्यंत श्रद्धा हो उनके हृदय के बारे मे चिंतन करो। उनका अंतःकरण सर्व विषयो से अनासक्त हो गया है, अतः उनके अंतःकरण के बारे मे चिंतन करने पर तुम्हारा अंतःकरण शान्त हो जायेगा। स्वामी ओमानन्द ''जिन महान योगियो ने विषयो की अभिलाशा पूर्णतया छोड दी है जिसके कारण उनके चित्त से अविद्यादि क्लेशो के संस्कार मिट गये है, उनके चित्त का ध्याान करने वाले चित्त मे भी वैसे ही सात्विकसंस्कार उत्पन्न होते है और वहसुगमता से एकाग्र हो जाते है आचार्य श्रीराम शर्मा '' जिनके राग–द्वेष विनष्ट हो चुके है ऐसे योगियो को ध्येय बनाकर अपना भाव वैसा ही बना करके अभ्यास करने वाला चित्त भी स्थिरता प्राप्त कर लेता है। यदि पूर्वाक्त उपाय न बन पडे तो शुद्ध, सत्वयुक्त चित्त के स्वप्र द्वारा भी चित्त एकाग्र हो सकता है जिसे अतिरिक्त उपाय के रूपमे महर्षि पंतंजलि बताते है।

स्वप्र– ''स्वप्ननिद्राज्ञानालंबन वा'' पा.या ेसूत्र 1/38 अर्थात स्वप्र–ज्ञाान तथा निद्रा–ज्ञान का आलंबन करने वाला चित्त भी स्थिति पद पाता है। स्वमी हरिहरानंद स्वप्रकाल मे बाह्य ज्ञान अवरूद्ध होता है एवं मानस भावसमूहप्रत्यक्ष से प्रतीत होते है। अतएव इस प्रकार के ज्ञान का आलंबन करके ध्यान करना ही स्वप्रज्ञानालंबन है। यहतीन प्रकार के उपाय स ेप्राप्त हा ेता है 1. ध्येय विषय की मानस प्रतिमा पूर्वोक्त उपय मे से कोई उपाय अनुकूल न हो तो साधकअपनी इच्छा से चयनित अथवा अपने निर्धारित इष्टदेव के फलस्वरूपका ध्यान करने का अभ्यास करे। इसमे भी स्थिर हो सकता है। सार रूपमे चित्त को स्थिर करने के लिए मन किसी स्थूल मूर्ति मे एकाग्र करना चाहिए, जो साधकको बहुत प्रिय हो। वहमूर्ति किसी देवता, गुरू, आदि किसी की भी हो सकती है क्योकि स्थूल पदार्थ मे मन जलदी एकाग्र हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द जो कोई भली वस्तु तुम्हे अच्छी लगे, जो स्थान तुम्हे पंसन्द हो, जो दृष्य था जो भाव तुम्हे बहुत अच्छा लगता है, जिससे तुम्हारा चित्त एकाग्र हो जाता है, उसी का चिंतन करो। इसलिए महर्शि पतंजलि ने अंत मे साधकको अपने अनुसार चित्त स्थिर करने हेतु उपर्युक्त उपाय करने को कहा है, क्यो किउससे भी चित्त स्थिर हो जाता है। चित्त अन्तराय हमारे चित्त की व ृत्तियो के परिणाम है। योग मार्ग के अतिरिक्त हमारे व्यावहारिकजीवन मे भी विभिन्न प्रकार की वृत्तियो के कारण विघ्र–बाधाएं आती रहती है। महर्षि पतंजलि ने अपने अन्तरायो मे उन सभी विघ्रो के फलस्वरूपहोने वाले परिणाम के संदर्भ मे भी वहस्पष्ट करते है और इन विघ्रो के समाधान हेतु मैत्री, करूणा, मुदिता, उपेक्षा व प्राणायाम, स्वप्र, निद्रा आदि विधियो का चित्त प्रसादन के रूपमे वर्णन करते है और अंत मे स्पष्ट करते है किजिसका जैसा मत हो वहउसी के अनुरूपउपाय कर सकता है।

संदर्भ

1. स्वामी ओमानंद तीर्थ पाताजल योगप्रदीपगीता प्रेस गोरखपुर उ0प्र0 पेज 217
2. स्वामी ओमानंद तीर्थ पाताजल योगप्रदीपगीता प्रेस गोरखपुर उ0प्र0 पेज 218
3. स्वामी ओमानंद तीर्थ पाताजल योगप्रदीपगीता प्रेस गोरखपुर उ0प्र0 पेज 225
4. स्वामी ओमानंद तीर्थ पाताजल योगप्रदीपगीता प्रेस गोरखपुर उ0प्र0 पेज 249
5. स्वामी ओमानंद तीर्थ पाताजल योगप्रदीपगीता प्रेस गोरखपुर उ0प्र0 पेज 251
6. स्वामी ओमानंद तीर्थ पाताजल योगप्रदीपगीता प्रेस गोरखपुर उ0प्र0 पेज 253
7. स्वामी ओमानंद तीर्थ पाताजल योगप्रदीपगीता प्रेस गोरखपुर उ0प्र0 ी पेज 254

8. स्वामी दिगम्बर जी– हठप्रदीपिका– कैवल्यधाम, स्वमी कुवल्यानंद मार्ग लोनावला पुण` महाराष्ट्र 2017
9. जयसवाल सीताराम भारतीय मनोविज्ञान आर्य बुकडिपो नई दिल्ली 1987
10. आत्रेय शांन्ति प्रकाश योग मनोविज्ञान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी ?
11. भारद्वाज ईश्वर, मानव चेतना– सत्यम प्रकाशन हाउस दिल्ली 2011
12. शास्त्री गिरीजाशंकर – वशिष्ट संहिता, चा`खंभा प्रकाशन वाराणसी
13. गीता प्र`स, गोरखपुर योग वाशिष्ट, गीता प्रेस, गा`रखपुर 2016